International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 5.414 Volume 5, Issue 12, December 2018
Website-www.aarf.asia,Email:editor@aarf.asia, editoraarf@gmail.com

प्रथम महायुद्ध और असहयोग आन्दोलन

डॉ० आलोक कुमार
इतिहास विभाग,
वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय राजनीति विपत्तियों के बादल से ढक गयी थी। पंजाब में मार्शला लॉ और उसके दंडात्मक परिणाम, टर्की की पराजय और उसके छिन्न–भिन्न हो जाने की आशंका मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार और उनकी असंतोषजनक प्रकृति, एक भयानक युद्ध की समाप्ति के बाद आनेवाली आर्थिक सिद्धांत भारत को एक विकट परिस्थिति में लाकर खड़ा कर दिया था। सितंबर 1920 ई. में कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्ष पद से बोलते हुए लाल लाजपत राय ने कहा, ''इस सच्चाई से आँखें बन्द कर लेने से कोई लाभ नहीं कि हम एक क्रांतिकारी जमाने से गुजर रहे हैं... कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में क्रांतियों से एकदम बचकर नहीं रह सकता।'' गाँधी जी ने प्रथम विश्व युद्ध के अवसर पर अंग्रेजी सरकार को पूर्ण सहायता प्रदान की। लेकिन बाद की घटनाओं ने स्पष्ट कर दिया कि अंग्रेजी सरकार न्यायप्रियता में कतई विश्वास नहीं करती। गाँधी जी अब राजभक्त से राजद्रोही हो गये। उन्होंने खिलाफत आन्दोलन पर मांटेग्यू शीर्षक एक लेख में कहा– ''मुझे यह जानकर बहुत अचंभा और चिंता हुई है कि साम्राज्य

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

के वर्तमान प्रतिनिधियों के मन में छल–कपट और बेईमानी समा गयी है। भारत की जनता की इच्छाओं के लिए उसके मन में कोई वास्तविक आदर नहीं है और उनकी दृष्टि में भारत के सम्मान का वास्तविक आदर नहीं है और उनकी दृष्टि में भारत के सम्मान का कोई मूल्य नहीं है। मेरे मन में एक ऐसी सरकार के लिए कोई सद्भावना नहीं हो सकता जिसमें इस प्रकार के दुर्विचार वाले लोग दायित्व पदों पर है।'' गाँधी जी की निराशा का परिणाम भारत में असहयोग आन्दोलन था जो एक क्रांतिाकरी कदम था तथा युद्ध की घोषणा करने के समान था। अंतर केवल इतना ही था कि यह युद्ध अहिंसक था। यह अपने किस्म का अतुलनीय युद्ध था। यह शत्रु को न तो पीड़ा पहुँचाता था, न घायल करता था। इस लड़ाई के अस्त्र अनुशासन, वीरता, धैर्य, त्याग और सहनशीलता थे। इस लड़ाई का सिपाही बनना हिंसात्मक युद्ध लड़ने से कहीं ज्यादा कठिन था। गाँधी जी ने स्पष्ट कर दिया कि पूर्ण सविनय अवज्ञा शांतिपूर्ण विद्रोह की स्थिति है जिसके अंतर्गत ''राज द्वारा निर्मित एक भी कानून को मानने से इंकार करना होता है। यह निश्चय ही सशस्त्र विद्रोह से अधिक खतरनाक है क्योंकि यदि अहिंसक असहयोगी कठोर–से–कठोर परिस्थितियों का सामना करने के लिए कठिनबद्ध हो जाए तो उसे कभी दबाया नहीं जा सकता। यह निरपेक्ष श्रेष्ठता में पूर्ण विश्वास पर आधारित है।''

यह आन्दोलन तीन उद्देश्यों पर आधारित था– पंजाब की शिकायतें दूर करना, खिलाफत सम्बन्धी अन्यायों का प्रतिकार करना और स्वराज्य की स्थापना। इस आन्दोलन में राष्ट्रवाद और राजनीति तथा धर्म और रहस्यवाद एवं कट्टरता का विचित्र सामंजस्य था। लेकिन जैसा कि नेहरू ने लिखा है कि–

''वह जनता, जिसका मनोबल टूट रहा था जो पिछड़ी और बिखरी हुई थी, अचानक उठ बैठी। उसने अपना मस्तक ऊंचा किया, और देशव्यापी संयुक्त कार्रवाई में अनुशासित ढंग से संलग्न हो गयी। हमने महसूस किया कि उसकी यही कार्रवाई जनता को अजेय शक्ति प्रदान करेगी।''

असहयोगी आन्दोलन को देशभर में हार्दिक उत्तर मिला। नवंबर 1920 ई. में कौंसिलों के लिए जो चुनाव हुआ, उसमें करीब दो–तिहाई वोटरों ने भाग नहीं लिया। बहुत से विद्यार्थी स्कूलों और कॉलेजों के बाहर चले गये। जिन वकीलों ने अपनी प्रैक्टिस छोड़ दी, उनमें देशबन्धु चित्तरंजन दास और पंडित मोतीलाल नेहरू जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि अंग्रेजी कपड़े आग में जला दिये गये। सर्वत्र सरकार के विरूद्ध प्रतिरोध की भावना दृष्टिगोचर होती थी। जेल जाना प्रतिष्ठा का चिन्ह बन गया। जन–साधारण में राजभक्ति की भावना जगाने के लिए प्रिन्स ऑफ वेल्स को भारत बुलाया गया लेकिन उस दिन सर्वत्र हड़ताल मनाया गया।

यह आन्दोलन 20 महीनों तक निरंतर चलता रहा। यह वह काल था जब हिन्दुओं और मुसलमानों ने कंधा–से–कंधा मिलाकर खिलाफत और स्वराज्य के दो उद्देश्यों के लिए काम किया। लेकिन ब्रिटिश शासकों पर इसका कुछ असर नहीं पड़ा। नतीजा यह हुआ कि लोगों की निराशा बढ़ने लगी। 8 जुलाई, 1921 ई. को करॉंची में होने वाले अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन में भारतीय सेना के मुसलमानों से कहा गया कि वे नौकरी छोड़ दे क्योंकि नौकरी पर बने रहना धर्म के विरूद्ध है। सरकारी दमनचक्र जोर से चलने लगा। प्रमुख नेताओं को जेल भेज दिया गया। इसी बीच चौरा–चौरा काण्ड हुआ जिसमें हिंसक

भीड़ ने थाने में आग लगा दी जिससे अनेक सिपाही जलकर भस्म हो गये। इस स्थिति में गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया।

असहयोग आन्दोलन का भारतीय मानस पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ा। मद्रास के गर्वनर विलिगडन ने भारत सरकार के गृह सदस्य को लिखा, ''असहयोग आन्दोलन की जो भी उपलब्धियाँ रही हों, उसके कारण जनता में राजनैतिक विचार फैल गये हैं और उनकी शांत आत्म–दृष्टि को झकझोर दिया है।'' टर्की के प्रश्न पर खिलाफत आन्दोलन चलाया गया था। इस मसले पर भारतीय जनमत का अंतर्राष्ट्रीय राजनीति से प्रत्यक्ष सामना हुआ और पहले पहल भारत ने विश्व के कुटनीतिक इतिहास को प्रभावित किया। सेव्र की संधि में संशोधन और इसकी जगह पर लुसान की संधि को भारतीय लोकमत ने निर्णायक रूप से प्रभावित किया। विश्व के अन्य समस्याओं में भारत की रूचि बढ़ी और प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय घटना पर अब वे अपना विचार व्यक्त करने लगे। 1920 ई. के कांग्रेस अधिवेशन में आयरलैण्ड के संदर्भ में प्रस्ताव स्वीकार करके आयरिश शहीदों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की और आयरलैण्ड के स्वाधीनता संग्राम का समर्थन किया। तुर्की में मुस्तफा कमाल पाशा ने जब कुछ यूरोपीय राज्यों के खिलाफ युद्ध की घोषणा की तब भारत की सहानुभूति निःसंदेह तुर्की के पक्ष में थी। जब इस अभियान में मुस्तफा कमाल पाशा विजयी हुआ तो भारत ने इसे यूरोपीय साम्राज्यवाद के विरूद्ध एशियाई राष्ट्रीयता की विजय के रूप में स्वीकार किया।

तुर्की के प्रश्न को लेकर भारतीय राजनीति में जो हंगामा हुआ उसके फलस्वरूप भारतीय नेताओं को एशियाई देशों को संगठित करने की भावना

को बल मिला। 1928 ई. में खिलाफत कांफ्रेस के गया अधिवेशन में अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए एम.ए. अंसारी ने एक एशियाई संघ बनाने का प्रस्ताव रखा। 1922 ई. में कांग्रेस के अध्यक्ष सी.आर. दास ने एशियाई देशों को पश्चिम के विरूद्ध संगठित करने की आवश्यकता पर बल दिया। 1923 ई. में मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अध्यक्ष पद से कहा– ''पराधीन और शोषित एशियाई देशों की समस्याओं के साथ भारतीय समस्या का एकीकरण अत्यंत आवश्यक है। भारत को तत्काल मिश्र, सीरिया, फिलिस्तान, मोरक्को आदि के राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करना चाहिए।'' 1926 ई. में एक अन्य भारतीय नेता एस. श्रीनिवास आयंगार ने पुनः इस तथ्य पर जोर देते हुए कहा कि अब वह समय आ गया है जब भारत अभी एशियाई देशों के कल्याण के लिए एक एशियाई संगठन कायम करने की बात सोचे।

एशियाई राजनीति में भारतीयों की रूचि इतनी बढ़ गयी कि रविन्द्रनाथ टैगोर तथा कई अन्य भारतीय नेताओं ने पड़ोसी देशों का भ्रमण शुरू किया। इन यात्राओं का मुख्य उद्देश्य एशियाई देशों के साथ सांस्कृतिक संबंध कायम रखने के लिए भारत में कई संस्थाएँ कायम की गयीं। 1921 ई. में विश्व भारतीय में भारत–चीन अध्ययन विभाग खोला गया। 1923 ई. में विश्व भारती में भारत–चीन अध्ययन विभाग खोला गया। 1923 ई. में चीन में गणराज्य के निमंत्रण पर टैगोर ने चीन की यात्रा की। 3 अक्टूबर, 1924 ई. के अंत में क्रिश्चियन साइन्स मोनिटर ने इस यात्रा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा था– ''भारत चीन के संबंधों में यह सद्भावना यात्रा एक नया अध्याय खोलेगी।'' इसके साथ ही यह भी अनुभव किया गया कि एशियाई देशों का स्वाधीनता के लिए भारत की

स्वाधीनता आवश्यक है। क्योंकि पड़ोसी देशों के स्वाधीनता आन्दोलन को कुचलने के लिए भारत से सेना भेजी जाती है। ऐसी हालत में यदि भारत अपने साम्राज्यवादियों से मुक्त कर लेता तो सम्पूर्ण एशिया में मुक्ति का दरवाजा खुल जाता। जैसा कि गाँधी जी ने कहा था। ''एशियाई और गैर यूरोपीय लोगों के मुख्य आधार भारत है। भारत को स्वाधीन करके ही मैं उन सभी पद्लित राष्ट्रों को मुक्ति दिलाना चाहता हूँ जो यूरोपीय राज्यों द्वारा शासिल हो रहे है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डी0 आर गाडगी : द इन्ड्रस्ट्रियल इवोल्यूशन ऑफ इण्डिया, 1942, पृ. 198–99।
2. ए0 आर0 देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ. 86–87।
3. रफीक अफजल : स्पीचेंज एण्ड स्टेट मेन्स ऑफ जिन्ना, पृ. 72।
4. रमेश चंद्र मजुमदार : फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया, पृ. 341–41।
5. निकालेस मानसर्ग : आरलैण्ड, इन दी एज ऑफ रिफॉर्म एण्ड रिवोल्यूशन, पृ. 237–45।
6. सी0 आई0 चिन्तामणी : इंडियन पॉलिटिक्स सि द म्यूटनी, पृ. 94।
7. मदन गोपाल : इण्डिया एज ए वर्ल्ड पावर, पृ. 6।
8. के0 सी0 हवीयर : द इम्पायर एण्ड दी पीस ट्रिटीज, 1918–1921, पृ. 645।